बचपन की ईद की वो खौफ़नाक यादें जो आज भी डराती है

ईद की सुबह स्नानघर में घर के सभी लोगो ने बारी-बारी से कोस्को साबुन लगाकर ठण्डे पानी से गुस्ल किया। मुझे नए कपड़े -जूते पहनाए गए, लाल रिबन से बाल से बाल संवारे गए, मेरे बदन पर इत्र लगाकर कान में इत्र का फाहा ठूंस दिया गया। घर के लड़कों ने कुर्ता-पाजामा पहनकर सिर पर टोपी लगाई ।उनके कानों में भी इत्र के फाहे थे ।पूरा घर इत्र से महकने लगा।
घर पुरूषों के साथ मैं भी ईद के मैदान की ओर चल पड़ी ।ओह कितना विशाल मैदान था। घास पर बिस्तर के बड़े-बड़े चादर बिछाकर पिताजी ,बड़े भैया , छोटे भैया और बड़े मामा के अलावा मेरे सभी मामा वहां नमाज पढ़ने के लिए खड़े हो गए। पूरा मैदान लोगों से भरा हुआ था ।नमाज शुरू होने के बाद जब सभी झुक गए, तब मै मुग्ध होकर खड़ी-खड़ी वहां का दृश्य देखने लगी। बहुत कुछ हमारे स्कूल की असेम्बली के पीटी करने जैसा था , जब हम झुककर अपने पैरो की अगुलियां छूते थे , तब वहां भी कुछ ऐसा ही लगता होगा ।नमाज खत्म होने के बाद पिताजी अपने परिचितों से गले मिलने लगे। गले मिलने का नियम सिर्फ लड़को में ही था ।घर लौटकर मैंने अपनी मां से कहा, ”आओ मां ,हम भी गले मिलकर ईद मुबारक कहें।”

मां ने सिर हिलाकर कहा ,”लड़कियां गले नहीं मिलतीं ।”
“क्यों नहीं मिलतीं” पूछने पर वे बोलीं, “रिवाज नहीं है ।”
मेरे मन में सवाल उठा, “रिवाज क्यों नहीं है ?”

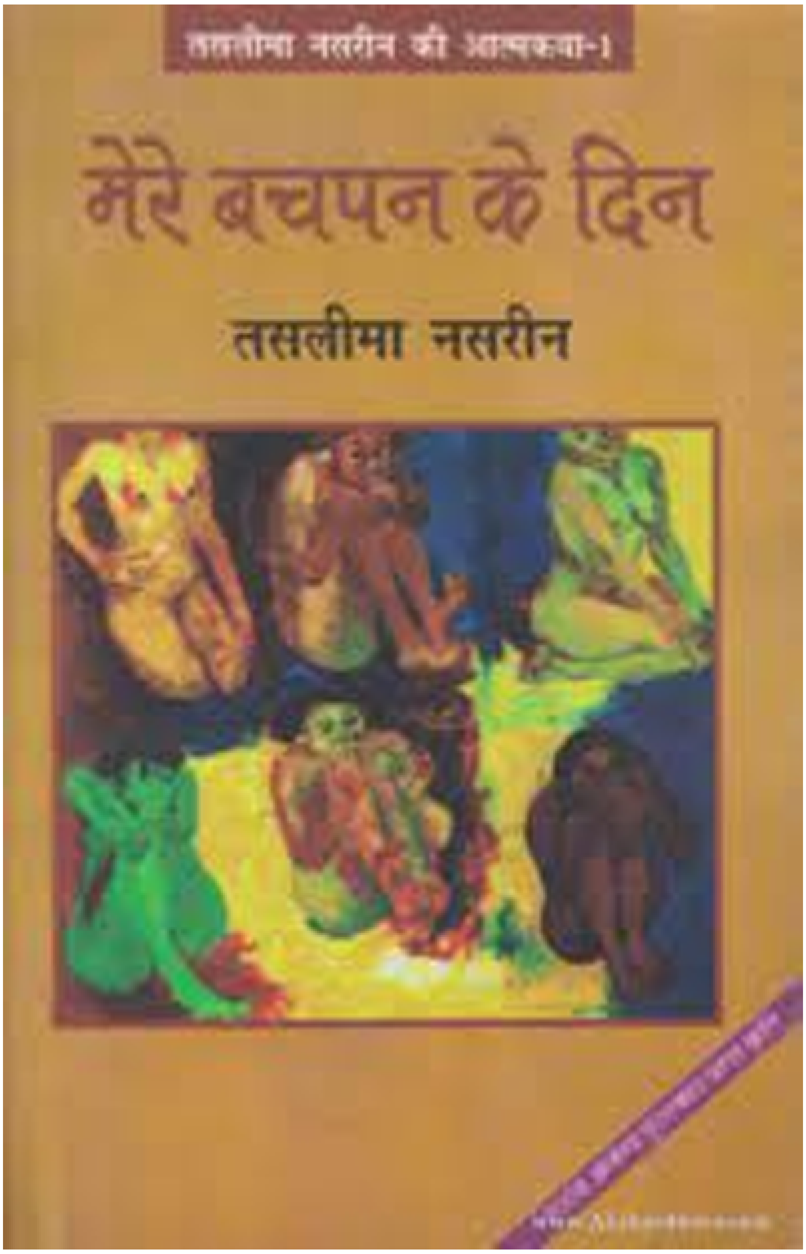

खुले मैदान में कुर्बानी की तैयारियां होने लगीं । तीन दिन पहले खरीदा गया काला सांड़ कड़ई पेड़ से बंधा था । उसकी काली आखों से पानी बह रहा था । यह देखकर मेरे दिल में हूक उठी कि एक जीवित प्राणी अभी पागुर कर रहा है , पूंछ हिला रहा है जो थोड़ी देर बाद गोश्त के रूप में बदलकर बाल्टियों में भर जाएगा । मस्जिद के इमाम मैदान में बैठकर छुरे की धार तेज कर रहे थे। हाशिम मामा कहीं से बांस ले आए । पिताजी ने आंगन में चटाई बिछा दी ,जहां बैठकर गोश्त काटा जानेवाला था । छुरे पर धार चढ़ाकर इमाम ने आवाज दी ।

हाशिम मामा , पिताजी और मुहल्ले के कुछ लोगों ने सांड़ को रस्सी से बांधकर बांस से लंगी लगाकर उसे जमीन पर गिरा दिया । सांड़ 'हम्बा' कहकर रो रहा था । मां और खाला वगैरह कुर्बानी देखने के लिए खिड़की पर खड़ी हो गई ।सभी की आंखों में बेपनाह खुशी थी।

लुंगी पहने हुए बड़े मामा ने, जिन्होंने इत्र वगैरह नहीं लगाया था, मैदान के एक कोने पर खड़े होकर कहा, " ये लोग इस तरह निर्दयतापूर्वक एक बेजुबान जीव की हत्या कर रहे हैं। जिसे लोग कितनी खुशी

से देख रहे हैं। वो सोचते हैं कि अल्लाह भी इससे खुश होते होंगे। दरअसल किसी में करुणा नाम की कोई चीज नहीं है।" बड़े मामा से कुर्बानी का वह वीभत्स दृश्य देखते नहीं बना। वे चले गए। मगर मैं खड़ी रही।

सांड़ हाथ-पैर पटक कर आर्तनाद कर रहा था। वह सात-सात तगड़े लोगों को झटक कर खड़ा हो गया। उसे फिर से लंगी मारकर गिराया गया। इस बार उसे गिराने के साथ ही इमाम ने धारदार छूरे से अल्लाह हो अकबर कहते हुए उसके गले को रेत दिया। खून की पिचकारी फूट पड़ी। गला आधा कट जाने के बाद भी सांड़ हाथ-पैर पटककर चीखता रहा।
मेरे सीने में चुनचुनाहट होने लगी, मैं एक प्रकार का दर्द महसूस करने लगी। बस मेरा इतना ही कर्तव्य था कि मैं खड़ी होकर कुर्बानी देख लूं। मां ने यही कहा था, इसे वे हर ईद की सुबह कुर्बानी के वक्त कहती थीं। इमाम सांड़ की खाल उतार रहे थे तब भी उसकी आंखों में आंसू भरे हुए थे। शराफ मामा और फेलू मामा उस सांड के पास से हटना ही नहीं चाहते थे। मैं मन्नू मियां की दुकान पर बांसुरी व गुब्बारे खरीदने चली गई। उस सांड के गोश्त के सात हिस्से हुए। तीन हिस्सा नानी के घरवालों का, तीन हिस्सा हमलोगों का और एक हिस्सा भिखाड़ियों व पड़ोसियों में बांट दिया गया।

****बड़े मामा लुंगी और एक पुरानी शर्ट पहनकर पूरे मुहल्ले का चक्कर लगाने के बाद कहते, "पूरा मुहल्ला खून से भर गया है। कितनी गौएं कटी, इसका हिसाब नहीं। ये पशुधन किसानों को ही दे दिए जाते तो उनके काम आ सकते थे। कितने ही किसानों के पास गाय नहीं है। पता नहीं, आदमी इतना राक्षस क्यों है ? समूची गाए काटकर एक परिवार गोश्त खाएगा, उधर कितने लोगों को भात तक नहीं मिलता।"

बड़े मामा को गुस्ल करके ईद के कपड़े पहनने के लिए तकादा देने का कोई लाभ नहीं था। आखिरकार हारकर नानी बोली, "तूने ईद तो किया नहीं तो क्या इस वक्त खाएगा भी नहीं ? चल खाना खा ले।" " खाऊंगा क्यों नहीं, मुझे आप खाना दीजिए। गोश्त के अलावा अगर कुछ और हो तो दीजिए।" बड़े मामा गहरी सांस लेकर बोले।

नानी की आंखों में आंसू थे। बड़े मामा ईद की कुर्बानी का गोश्त नहीं खाएंगे, इसे वे कैसे सह सकती थीं। नानी ने आंचल से आंखें पोंछते हुए प्रण किया कि वे भी गोश्त नहीं छुएंगी। अपने बेटे को बिना खिलाए माताएं भला खुद कैसे खा सकती हैं। बड़े मामा के गोश्त न खाने की बात पूरे घर को मालूम हो गई। इसे लेकर बड़ों में एक प्रकार की उलझन खड़ी हो गई।

साभार : तसलीमा नसरीन : आत्मकथा भाग-एक, मेरे बचपन के दिन, वाणी प्रकाशन।